चोल राजवंश
[CHOLA DYNASTY]

चोल वंश सुदूर दक्षिण के प्राचीन राजवंशों में से एक था। संगम-काल में चोलों ने अपनी प्रतिष्ठा को बनाकर रखा था परन्तु बाद के समय में वे शक्तिशाली पल्लवों, चालुक्यों और राष्ट्रकूटों के अधीन सामन्त की भाँति रह गये। 9वीं सदी के मध्य से उनकी शक्ति का पुनरुत्थान हुआ और इस अवसर पर वे सुदूर दक्षिण की एक महान् शक्ति बन गये। 200 वर्ष से भी अधिक समय तक चोलों ने तुंगभद्रा नदी के दक्षिण के सभी भू-प्रदेश और अरब सागर के बहुत से द्वीपों पर अपनी सत्ता को स्थापित रखा तथा शासन और सभ्यता के विकास की दृष्टि से दक्षिण-भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भाग लिया।

1. विभिन्न शासक (Various Rulers)

विजयालय (850–871 ई.)—9वीं सदी में चोल-शक्ति की स्थापना में प्रमुख भाग विजयालय ने लिया। विजयालय पल्लव-शासकों के अधीन एक शक्तिशाली शासक था। उसने पल्लव और पाण्ड्यों से तंजौर को छीन कर ऊरैयर के स्थान पर तंजौर नगर को अपनी राजधानी बना दिया। इस प्रकार चोलों की प्राथमिक राजधानी 'उरगपुर' से हटकर 'तंजौर' (थंजाबुर अथवा तंजाउर) में स्थापित हो गई। उसने कावेरी की निम्न घाटी और कोलसन घाटी को विजय किया।

आदित्य प्रथम (871–907 ई.)—विजयालय के पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्य ने पल्लव-शासक अपराजित को पाण्ड्यों के विरुद्ध सहायता दी। बाद में 893 ई. के लगभग उसने अपराजित को परास्त करके मार दिया और सम्पूर्ण तोण्डमण्डल पर अपना अधिकार करके चोल वंश के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। पल्लवों का बचा हुआ सभी राज्य उसके हाथों में चला गया। उसने पश्चिमी गंगों को भी अपनी अधीनता मानने के लिए बाध्य किया। उसने अपनी राजधानी तंजौर में अनेक शिव-मन्दिरों का निर्माण कराया और उसे सुन्दर बनाया।

परान्तक प्रथम (907–953 ई.)—परान्तक ने श्रीलंका और पाण्ड्य-शासक राजसिंह की सम्मिलित सेनाओं को परास्त करके राजसिंह के राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसने बाणों और वैदुम्बों को परास्त किया तथा बल्लाल के युद्धों में राष्ट्रकूट-शासक कृष्णा द्वितीय को परास्त करके पैनर नदी के दक्षिण के सम्पूर्ण भू-प्रदेश पर अधिकार कर लिया। परन्तु चोलों की शक्ति के इस तीव्र विकास को राष्ट्रकूट-शासक सहन न कर सके और कृष्णा तृतीय ने गंग-शासक के साथ मिलकर चोल-राज्य पर आक्रमण किया। 949 ई. में तक्कोलम नामक स्थान पर चोल-सेना की पराजय हुई और चोल-युवराज राजदित्य इस युद्ध में मारा गया। राष्ट्रकूटों ने तोण्डमण्डल को भी अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। चोलों की यह पराजय इतनी गम्भीर थी कि अगले 32 वर्षों तक चोल-शासक दक्षिण की राजनीति में नगण्य बने रहे।

परान्तक प्रथम के पश्चात् सम्भवतया सुन्दर चोल अथवा परान्तक द्वितीय (957-973 ई.) ने तोण्डमण्डल को पुनः प्राप्त करने में सफलता पायी।

राजराज प्रथम महान् (985–1014 ई.)—उत्तराधिकार में युवराज अरमोलिवर्मन् प्रथम को 985 ई. में अशान्त एवं अव्यवस्थित छोटा-सा कमजोर राज्य प्राप्त हुआ। सिंहासन पर बैठने से पूर्व में ही उसे उत्तर चोल के शासनकाल में ही 'युवराज' के रूप में सैन्य-संचालन तथा शासन कार्य का अनुभव प्राप्त हो चुका था। उसने 'राजराज' की उपाधि धारण की।

राजराज प्रथम अपने जीवन में शैव-धर्मावलम्बी था। उसने 'शिवपाद शेखर' की उपाधि भी धारण की।

चोलों की शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का श्रेय राजराज को गया जो चोल वंश का एक महान् शासक हुआ। उसने पश्चिमी गंगों, वेंगी के पूर्वी चालुक्यों, मदुरा के पाण्ड्यों, कलिंग के गंगों और केरल के चेरों को परास्त किया और सम्पूर्ण सुदूर दक्षिण में अपने राज्य का विस्तार किया। उसने एक शक्तिशाली नौ-सेना का निर्माण किया और उसकी सहायता से कुर्ग, सम्पूर्ण मलाबार-तट और श्रीलंका के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। उसने लकदीव और मालदीव नामक द्वीपों को जीता, पूर्वी द्वीपसमूहों पर आक्रमण किये और श्रीविजय-साम्राज्य के राजा तुंगवर्मन् से मित्रता की। उसने वेंगी में अपने समर्थक विमलादित्य को सिंहासन पर बैठाया और उससे अपनी पुत्री का विवाह किया। उसने पश्चिमी चालुक्य-शासक सत्याश्रय के राज्य पर आक्रमण करके उसे लूटा। इस प्रकार, राजराज ने चोलों के एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और उसकी महानता की नींव डाली।

राजराज एक महान् विजेता ही न था अपितु एक योग्य शासन-प्रबन्धक और निर्माता भी था। उसने दक्षिण भारत में सर्वप्रथम एक शक्तिशाली नौ-सेना का निर्माण किया। उसने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी राजकुमार को अपने समय में ही शासन में सम्मिलित करने की परम्परा को आरम्भ किया और एक अच्छे स्थानीय स्वशासन की नींव डाली। राजराज शैव-मतावलम्बी था। उसने राजराजेश्वर के शिव-मन्दिर का निर्माण कराया जो तमिल-वास्तुकला का एक अद्वितीय नमूना माना गया है। परन्तु वह धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु था। उसने बौद्ध-मठों एवं विहारों को भी संरक्षण प्रदान किया।

राजेन्द्र प्रथम (1014–1044 ई.) – राजराज प्रथम ने अपने पुत्र राजेन्द्र प्रथम को 1012 ई. में युवराज-पद पर आसीन कर उसे भावी सम्राट के रूप में प्रशिक्षित कर दिया था। 1014 ई. में राजेन्द्र प्रथम को चोल राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। राजेन्द्र ने अपने पिता द्वारा शुरू किये गये कार्य को आगे बढ़ाया और चोलों की शक्ति को उसकी चरम सीमा पर पहुँचा दिया। उसने दक्षिण के पाण्ड्य और चेर राज्यों को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसने श्रीलंका को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया यद्यपि 1029 ई. में दक्षिणी श्रीलंका उसके आधिपत्य से मुक्त हो गया। उसने पश्चिमी चालुक्यों के शासक जयसिंह के वेंगी पर अपने प्रभुत्व को स्थापित करने के प्रयत्न को असफल किया और बाद के समय में चालुक्य-शासक सोमेश्वर प्रथम के राज्य पर आक्रमण करके उसे लूटा। उसके समय में तुंगभद्रा नदी को पश्चिमी चालुक्य-राज्य और चोल-साम्राज्य को विभाजित करने वाली रेखा मान लिया गया। राजेन्द्र ने कलिंग, उड़ीसा और बस्तर के मार्ग से पश्चिमी बंगाल पर आक्रमण किया और शक्तिशाली पाल-शासक महीपाल को परास्त किया। परन्तु उत्तर-भारत पर उसका यह आक्रमण केवल कीर्ति स्थापित करने हेतु किया गया। उसने उत्तर-भारत के किसी भाग को अपने राज्य में सम्मिलित नहीं किया। उसने मलाया, जावा, सुमात्रा आदि में स्थापित महान् शैलेन्द्र-साम्राज्य पर नौ-सेना के द्वारा आक्रमण किया और वहाँ के शासक श्रीविजय ने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। अरब सागर में भी उसने अपनी नौ-सेना की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। इन आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य समुद्री व्यापार की रक्षा करना था जिसमें वह सफल हुआ।

राजेन्द्र एक महान् विजेता था और वह अरब सागर में नौ-सेना की श्रेष्ठता को स्थापित करने वाला पहला भारतीय शासक था। इसके अतिरिक्त वह एक योग्य शासक और महान्

निर्माता था। उसने गंगैईकोण्डचोलपुरम् नामक अपनी राजधानी को बसाया, वहाँ अनेक मन्दिर और महल बनवाये तथा चोलगंगम नामक एक झील का निर्माण किया। इस उपलक्ष में उसने **'गंगैकोंड चोल'** की उपाधि धारण की।

राजेन्द्र चोल ने 1044 ई. तक शासन किया। उसने वीर राजेन्द्र, परकेशरिवर्मन्, मुंडिगोंड चोल, पंडित चोल, कडारकोंड तथा गंगैकोंडचोल आदि विरुदों को धारण किया। अपने राज्यकाल में ही उसने अपने पुत्र राजाधिराज को युवराज-पद पर अभिषेक कराकर उसे अपना सम्भाव्य उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

राजाधिराज (1044–1052 ई.)—उसके पुत्र राजाधिराज का अधिकांश समय पाण्ड्य और श्रीलंका के विद्रोहों को दबाने में व्यतीत हुआ। उसने 1052 ई. में चालुक्य-शासक सोमेश्वर को परास्त करने में भी सफलता पायी। परन्तु वह इसी युद्ध में मारा गया।

राजेन्द्र द्वितीय (1052–1064 ई.)—राजेन्द्र ने पश्चिमी चालुक्यों और श्रीलंका के राजाओं से युद्ध किये और अपने साम्राज्य की सुरक्षा करने में सफलता पायी।

राजेन्द्र के पश्चात् वीरराजेन्द्र (1064–1070 ई.) ने श्रीलंका और शैलेन्द्र-साम्राज्य पर अपने आधिपत्य को सुरक्षित रखा और चालुक्य-शासक सोमेश्वर प्रथम और सोमेश्वर द्वितीय को परास्त करने में सफलता पायी। उसके पश्चात् उसका पुत्र अधिराजेन्द्र (1070 ई.) शासक बना परन्तु कुछ विद्रोहियों के द्वारा वह बहुत शीघ्र मारा गया।

कुलोत्तुंग प्रथम (1070–1120 ई.) अधिराजेन्द्र के पश्चात् चोल वंश की मध्य शाखा समाप्त हो गयी और उसके पश्चात् उसका बहनोई कुलोत्तुंग प्रथम शासक बना। कुलोत्तुंग ने पाण्ड्य और केरल के शासकों को परास्त किया, अपनी पुत्री का विवाह श्रीलंका के एक राजकुमार से किया, कन्नौज, काम्बोज, चीन और ब्रह्मा से अपने कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये और अपने राज्य को समृद्धशाली बनाया।

कुलोत्तुंग प्रथम के उत्तराधिकारियों (विक्रम चोल, कुलोत्तुंग द्वितीय, राजराज द्वितीय, राजाधिराज द्वितीय, कुलोत्तुंग तृतीय, राजराज तृतीय और राजेन्द्र तृतीय) ने एक सदी (1120–1279 ई.) से भी अधिक समय तक शासन किया परन्तु उनके समय में चोलों की शक्ति निरन्तर दुर्बल होती गयी। पाण्ड्य, होयसल, काकतिया और पूर्वी गंग-वंश के शासक उनकी सीमाओं को छोटा करते चले गये।

राजेन्द्र तृतीय (1246–1279 ई.) राजराज तृतीय के बाद 1246 ई. में राजेन्द्र तृतीय चोल राजसिंहासन पर बैठा। युवराज काल में सम्भवतः उसने पाण्ड्य राज्य को जीत लिया तथा होयसल एवं काकातीय राज्यों को पराजित करके अपने साम्राज्य में कुछ समय के लिए सम्मिलित कर लिया था। 1250 ई. में काकातीय शासक गणपति ने आक्रमण कर काँची पर अधिकार कर लिया। सुंदरपांड्य ने भी होयसल नरेश की सहायता पाकर चोल राज्य पर आक्रमण किया था। फलतः विवश होकर उसने पांड्यों की अधीनता स्वीकार कर ली। लगभग 1279 ई. तक वह पांडयों के अधीन सामन्त शासक के रूप में बना रहा। फलतः चोल शासित प्रदेश पर शक्तिशाली पांड्य राज्य की प्रभुसत्ता स्थापित हो गयी।

2. चोलकालीन सभ्यता तथा संस्कृति (Civlization and Culture during Cholas)

(i) केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन—केन्द्रीय शासन का प्रधान सम्राट होता था और वह सम्मानित उपाधियाँ ग्रहण करता था। तंजौर, गंगैईकोण्डचोलपुरम्, मुडिकोण्डन और काँची समय-समय पर विभिन्न सम्राटों की राजधानियाँ रहीं। सम्राटों के सम्मान में ऐश्वर्य में वृद्धि

हुई थी और मन्दिरों में सम्राटों और उनकी पत्नियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयी थीं। परन्तु चोल-शासक निरंकुश न थे। प्रजा की भलाई और सार्वजनिक हित के कार्य करना वे अपना प्रमुख कर्तव्य मानते थे। चोल-शासकों ने अपने समय में ही युवराज (राज्य का उत्तराधिकारी) को चुनने और शासन में उसे सम्मिलित करने की परम्परा को आरम्भ किया था जिसके कारण उनके समय में उत्तराधिकार के युद्ध नहीं हुए। सम्राट का पद पैतृक होता था और, साधारणतया, ज्येष्ठ पुत्र को ही युवराज चुना जाता था। परन्तु बड़े पुत्र के अयोग्य होने पर छोटे पुत्रों में से किसी एक को युवराज चुने जाने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

चोल राजा ही शासन-सत्ता का सर्वोच्च अधिकारी होता था शासन का स्वरूप मुख्यतः राजतन्त्रात्मक था। राजा ही धर्माध्यक्ष माना जाता था। इस तरह राजा न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा धर्मानुष्ठान इत्यादि सभी का मुख्य सूत्राधार होता था। सम्राट की सहायता के लिए विभिन्न मन्त्री तथा राज्य के अन्य बड़े पदाधिकारी होते थे। राज्य के अधिकारियों को बड़ी-बड़ी उपाधियाँ और जागीरें दी जाती थीं। अधिकारी उच्च और निम्न दो प्रकार के होते थे। चोल-शासक ने एक व्यवस्थित असैनिक शासन-संगठन की स्थापना की थी।

राजा के प्रशासकीय आदेशों को कार्यान्वित करने का दायित्व **ओले** नामक अधिकारी का था। ओले द्वारा तैयार राजा के आदेश-पत्र को प्रवर सचिव के पदाधिकारी **ओलेयानायकम** जो कि राजा द्वारा नियुक्त होते थे की जाँच करते थे। ओलेयानायकम सम्भवतः राजा के प्रधान सचिव के रूप में कार्य करता था। उच्च पदाधिकारी **पेरुन्दरम** तथा उनसे अपेक्षाकृत छोटे अधिकारियों को '**शेरुतरम**' कहा जाता था।

चोल-सम्राटों ने एक विशाल सेना और श्रेष्ठ नौ-सेना का निर्माण किया था। हाथी, घुड़सवार और पैदल सेना के मुख्य अंग थे। अभिलेखों से चोल-सेना में 70 रेजीमेण्टों का होना प्रकट होता है। उनकी सेना में 60,000 हाथी थे और पूरी सेना में 1,50,000 सैनिक थे। अरब से श्रेष्ठ घोड़े मँगाये जाते थे और उन पर काफी धन व्यय किया जाता था। सैनिकों की छावनियाँ होती थीं जहाँ उनकी शिक्षा और अनुशासन का पर्याप्त प्रबन्ध था। सम्राट के शरीर-रक्षक अलग से होते थे जिन्हें 'वेलाइककारा' पुकारते थे। योग्य सैनिकों और सरदारों को 'क्षत्रियशिरोमणि' की उपाधि देकर सम्मानित किया जाता था। चोल-शासकों की नौ-सेना भी शक्तिशाली थी जिसके कारण वे श्रीलंका और शैलेन्द्र-साम्राज्य पर आक्रमण कर सके, अरब सागर में अपने व्यापार की सुरक्षा कर सके और बंगाल की खाड़ी को वस्तुतः अपनी एक झील बना सके। इस प्रकार, चोल-शासकों ने एक शक्तिशाली रक्षात्मक और आक्रामक सैनिक-शक्ति का निर्माण किया था। परन्तु चोल-सेना हिन्दुओं की परम्परागत युद्ध-नैतिकता का पालन करने में असमर्थ रही थी। युद्ध के अवसरों पर चोल-सैनिक सामान्य जनता पर अत्याचार करते थे। लूट-मार, अंग-विच्छेद और स्त्रियों को अपमानित करना चोल-सैनिकों के लिए अपवाद न था।

राज्य की आय का मुख्य साधन लगान अथवा भूमि-कर था। राजराज प्रथम के समय में लगान पैदावार का 1/2 भाग होता था। लगान गल्ले और सिक्के दोनों ही रूपों में लिया जाता था। चोल-शासकों ने सिंचाई की अच्छी व्यवस्था की थी। उन्होंने झीलें बनवायीं तथा कावेरी और अन्य नदियों पर बाँध बनवाकर सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था की। उत्पादन के आधार पर भूमि को कई किस्मों में बाँट दिया जाता था और लगान भूमि की पैमाइश करके उसके उत्पादन पर निश्चित किया जाता था। लगान वसूल करने में कठोरता की जाती थी। लगान किसानों से अथवा सामूहिक रूप में सम्पूर्ण गाँव से लिया जाता था। लगान के

अतिरिक्त व्यापार, व्यवसाय, खानों, वनों, सिंचाई, नमक, पान आदि पर कर राज्य की आय के अन्य साधन थे। शासन, सेना, सार्वजनिक निर्माण-कार्य, सम्राट और उसके महल का व्यय आदि राज्य के व्यय के मुख्य विषय थे।

सम्पूर्ण राज्य को **मण्डलों** (प्रान्तों) में, विभक्त किया गया था। प्रान्तों का प्रशासन मुख्यतः चोल राजकुमारों के अधीन होता था। मण्डल को विशाल भू-क्षेत्रों में बाँटा गया था जिन्हें **कोट्टम** कहा जाता था। प्रत्येक 'कोट्टम' को अनेक **नाडुओं** अथवा जनपद में विभक्त किया गया था। प्रत्येक 'नाडु' में अनेक **कुर्रम** अथवा ग्राम समूह सम्मिलित थे। ग्राम प्रशासन की सबसे **छोटी इकाई** थी। चोल नरेश राजराज प्रथम के शासनकाल में तत्कालीन मण्डलों की संख्या 8 या 9 थी।

(ii) **स्थानीय स्वशासन**—चोल-शासन की एक मुख्य विशेषता स्थानीय स्वशासन माना गया है। चोल-शासन में गाँव से लेकर मण्डल तक के लिए स्वशासन की व्यवस्था थी। गाँव की महासभा का शासन में बहुत महत्व था। इसके अतिरिक्त, कुर्रम, नादु और मण्डल तक में प्रतिनिधि-सभाएँ होती थीं जिनसे शासन में सहयोग प्राप्त किया जाता था। मण्डल प्रशासन से लेकर ग्राम प्रशासन तक शासकीय कार्य में सहायता करने के लिए स्थानीय सभाएँ होती थीं। **नाडु** की स्थानीय सभा को **नाटूर** तथा **नगर** की सभा का नाम **नगस्तार** था। इसी प्रकार शिल्पियों व व्यवसायियों की सभाओं का नाम क्रमशः **श्रेणी** और **पूग** था। स्थानीय स्वशासन की रूपरेखा का अनुमान गाँव की महासभा के अधिकार तथा कर्तव्यों से किया जा सकता है।

प्रत्येक गाँव को 30 वार्डों में बाँटा जाता था और प्रत्येक वार्ड के व्यक्ति कुछ व्यक्तियों को चुनते थे। चुने जाने वाले व्यक्तियों के लिए आवश्यक था कि उनके पास प्रायः $1\frac{1}{2}$ एकड़ भूमि हो, अपना मकान हो, 30 से 70 वर्ष की आयु हो, कम से कम एक वेद और भाष्य का ज्ञाता हो और उसने अथवा उसके किसी सम्बन्धी ने कोई भी अपराध न किया हो। उन सभी चुने हुए व्यक्तियों में से प्रत्येक वार्ड से एक व्यक्ति लिया जाता था और उसके लिए पर्चियाँ डालकर नाम निकलवाये जाते थे। इस प्रकार, ग्राम-महासभा अथवा सभा में 30 व्यक्ति लिये जाते थे। उसके पश्चात् उसकी विभिन्न समितियाँ बना दी जाती थीं, जैसे—न्याय समिति, स्थायी समिति, उपवन समिति, तडाग समिति, कृषि समिति, न्याय समिति तथा प्रतिरक्षा समिति आदि। महासभा की बैठक मन्दिर में अथवा किसी वृक्ष के नीचे होती थी और उसके निर्णयों को लिखकर रखा जाता था।

ग्राम-महासभा सार्वजनिक भूमि की स्वामी होती थी और व्यक्तिगत भूमि पर उसका नियन्त्रण था। भूमि सम्बन्धी सभी परिवर्तनों पर केन्द्रीय सरकार महासभा की स्वीकृति लेती थी। वह सरकारी कर्मचारियों को उत्पादन का अनुमान लगाने और लगान निश्चित करने में सहायता देती थी। गाँव से लगान वसूल करने का अधिकार भी उसी का था और जो लगान नहीं देता था उसकी भूमि को वह नीलाम करा सकती थी। वही गाँव के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले जंगलों और बेकार पड़ी हुई भूमि की देखभाल करती थी और उसकी प्रगति का प्रयत्न करती थी। गाँव की देखभाल के बदले उसे कर लगाने का अधिकार था और अपने कार्य के लिए वह वेतनभोगी कर्मचारियों की नियुक्ति करती थी। उसकी न्याय-समिति गाँव के सभी असैनिक और फौजदारी झगड़ों का निर्णय करती थी। महासभा स्थानीय सड़कों, तालाबों, सिंचाई के साधनों, दान और धर्म के हेतु दी गयी भूमि, सम्पत्ति, मन्दिर आदि सभी की देखभाल करती थी। इस प्रकार, स्थानीय शासन के प्रायः सभी कार्यों की देखभाल गाँव की महासभा करती थी। केन्द्रीय सरकार स्थानीय शासन में उसी समय हस्तक्षेप करती थी जब

ऐसा करना अनिवार्य हो जाता था अन्यथा शासन की विभिन्न इकाइयाँ अपने स्थानीय शासन की देखभाल स्वयं करती थीं। **नीलकान्त शास्त्री** ने लिखा है : "सुयोग्य नौकरशाही और सक्रिय स्थानीय संस्थाओं के मध्य जो विविध प्रकार से नागरिकता की भावना का पोषण करती थीं, प्रशासनिक-निपुणता तथा शुद्धता का एक ऐसा श्रेष्ठ स्तर प्राप्त कर लिया गया था जो, सम्भवतया, एक हिन्दू राज्य द्वारा प्राप्त किया गया सर्वोच्च स्तर था।"[1]

(iii) **सामाजिक दशा**—चोल-काल का समाज जातीय व्यवस्था पर संगठित था। परन्तु विभिन्न जातियाँ सहयोगात्मक जीवन व्यतीत करती थीं। अनुलोम और प्रतिलोम दोनों ही प्रकार के विवाह होते थे जिनके कारण विभिन्न उप-जातियों का निर्माण हुआ था। स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। उन पर कोई सामाजिक बन्धन न थे। यद्यपि लज्जा स्त्री का एक विशेष गुण माना जाता था परन्तु तब भी पर्दा-प्रथा न थी और स्त्रियाँ सभी सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में भाग लेती थीं। स्त्रियाँ सम्पत्ति की स्वामिनी होती थीं। साधारण व्यक्ति एकपत्नी व्रत का पालन करते थे परन्तु सम्राट, सामन्त और धनाढ्य व्यक्ति बहु-विवाह करते थे। देवदासी-प्रथा प्रचलित थी और नगरों में गणिकाएँ (वेश्याएँ) भी होती थीं। समाज में दास-प्रथा भी प्रचलित थी।

(iv) **आर्थिक दशा**—चोल-शासन में राज्य और प्रजा सम्पन्न थे। चोल-शासकों ने कृषि की वृद्धि के लिए सिंचाई की अच्छी व्यवस्था की थी जो राज्य की आय और प्रजा की समृद्धि का मुख्य आधार था। उनके समय में व्यापार और उद्योगों की प्रगति हुई थी, राजमार्गों की सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध था और एक शक्तिशाली नौ-सेना के कारण समुद्री मार्ग से विदेशी व्यापार की प्रगति हुई थी। उद्योगों में वस्त्र, आभूषण, धातु की वस्तुओं का निर्माण, नमक बनाना तथा मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण प्रमुख थे। उस समय में चीन, मलाया, दक्षिण-पूर्वी द्वीपसमूह और पश्चिम की खाड़ी के निकट के देशों से अत्यधिक व्यापार होता था।

(v) **आय के साधन**—आय के अनेक साधन थे जिनमें कृषि एक प्रमुख स्रोत था। चोल राजाओं ने सिंचाई के साधनों पर विशेष बल दिया। सम्पूर्ण राज्य की भूमि की माप कराई गई ताकि कर-निर्धारण ठीक से किया जा सके। भूमिकर खेत की उर्वरकता एवं वार्षिक फसल चक्र को ध्यान में रखकर किया जाता था। भूराजस्व उपज का सम्भवतः एक-तिहाई हिस्सा निश्चित किया जाता था जो कि धन या अन्न के रूप में वसूल किया जाता था। राजस्व विभाग के प्रमुख अधिकारी **वरित्पोत्तवाकक** कहलाते थे। नगरों में कर संग्रह का उत्तरदायित्व **नगरम्** समिति के अधीन था। करों की वसूली में चोल तन्त्र बहुत कठोर था। कर अदा न करने पर सम्पत्ति को नीलाम (समैविलै) कर दिया जाता था।

(vi) **धार्मिक दशा**—चोल-शासक हिन्दू, शैव और वैष्णव धर्म के समर्थक थे। सम्राट विजयपाल के पश्चात् के समय से दक्षिण भारत में हिन्दू, शैव और वैष्णव सम्प्रदाय का रजत-युग आरम्भ हुआ। इस काल के धर्म में मन्दिरों का स्थान प्रमुख बन गया था। मन्दिर धर्म, शिक्षा, कला और जन-सेवा के केन्द्र-स्थान बन गये थे। इस कारण चोल-शासकों ने अनेक

---

1 "Between an able bureaucracy and the active local assemblies which in various ways fostered a lively sense of citizenship, there was attained a high standard of administrative efficiency and purity, perhaps the highest, ever attained by a Hindu state." —*K. A. Nilakanta Sastri.*

मन्दिरों का निर्माण किया। परन्तु हिन्दू धर्म का समर्थन करते हुए भी चोल-शासक धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु थे। प्रायः सभी शासकों ने सभी धर्मों का सम्मान किया। एक दो उदाहरण ऐसे भी प्राप्त होते हैं जब किसी शासक ने धार्मिक असहिष्णुता की नीति को अपनाया परन्तु उसका परिणाम जन-विद्रोह हुआ। यह उदाहरण सिद्ध करता है कि शासक ही नहीं अपितु प्रजा भी धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास करती थी।

(vii) **साहित्य**—चोल-सम्राटों का शासन-काल तमिल-साहित्य का स्वर्ण-काल था। साहित्य के क्षेत्र में मुख्यतया काव्य-ग्रन्थों की रचना हुई। जैन विद्वान **तिरुत्कदेवर** ने *जीवन-चिन्तामणि*, **तोलामोक्ति** ने *शूलमणि*, **जयगोदार** ने *कलिंगत्तुप्पाणि* और **कम्बन** ने *रामावतारम्* नामक ग्रन्थ लिखे। बौद्ध विद्वान **बुद्धमित्र** ने *रसोलियम* और एक अन्य बौद्ध विद्वान ने *कुण्डलकेशि* तथा *कल्लदम* नामक ग्रन्थ लिखे। प्रसिद्ध विद्वान पुगलेन्दि और दण्डिन भी इसी काल में हुए। तमिल के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी विभिन्न ग्रन्थ लिखे गये। परान्तक प्रथम के समय में **वेंकटमाधव** ने ऋग्वेद पर अपना भाष्य लिखा और राजराज द्वितीय के समय में **केशवस्वामिन** ने *नानार्थार्णव* नामक कोष का सम्पादन किया।

(viii) **ललित-कलाएँ**—चोल-शासक महान् निर्माता थे। उनके समय में अनेक नगर, झील, बाँध, तालाब आदि बनाये गये। राजेन्द्र प्रथम द्वारा अपनी राजधानी गंगैईकोण्डचोलपुरम् के निकट बनवायी गयी झील बहुत विशाल थी जिसमें कोलेरुन और बेल्लार नदियों का जल भरा गया था और उससे अनेक नहरें निकाली गयी थीं।

परन्तु चोल-कला की मुख्य विशेषता मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण में पायी जाती है। प्रारम्भ में ये मन्दिर छोटे बनाये गये। विजयालय-चोलेश्वर मन्दिर, नागेश्वर-मन्दिर, कोरंगनाथ-मन्दिर और मुवरकोविल-मन्दिर प्रारम्भिक चोल-कला के अच्छे नमूने हैं। नागेश्वर-मन्दिर के गर्भगृह की बाहरी दीवार पर स्त्री-पुरुषों के सजीव तक्षण चित्र बनाये गये हैं। बाद में चोल-साम्राज्य की सम्पत्ति और ऐश्वर्य में वृद्धि हो जाने पर बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण हुआ। राजराज प्रथम ने तंजौर में राजराजेश्वर का मन्दिर बनवाया। उसी ने तिन्नवेली जिले में विरुवलीश्वरम् का मन्दिर बनवाया जिसमें पत्थर में खुदे हुए (तक्षण) चित्र बनाये गये हैं। राजेन्द्र प्रथम ने अपनी राजधानी गंगैईकोण्डचोलपुरम् में राजेश्वर की भाँति ही शिव का एक विशाल मन्दिर बनवाया। राजराज द्वितीय ने ऐरावतेश्वर का मन्दिर और कुलोत्तुंग तृतीय ने कम्पहरेश्वर के मन्दिर का निर्माण कराया। ये सभी मन्दिर आकार की दृष्टि से बहुत विशाल और कला की दृष्टि से अति सुन्दर हैं। तंजौर का राजराजेश्वर का मन्दिर 150 मीटर लम्बा और 75 मीटर चौड़ा है। इसमें 14 मंजिलें हैं जो 57 मीटर ऊँची हैं। इसके शीर्ष पर 7.50 मीटर ऊँचा गुम्बद है जिसका वजन 80 टन है और जो एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। सम्पूर्ण मन्दिर पत्थर की विभिन्न मूर्तियों से अलंकृत है। **पर्सी ब्राउन** ने उसके बारे में लिखा है : "यह सम्पूर्ण भारतीय वास्तु-कला की अनुपम कसौटी है।"[1] निश्चय ही चोल-शासकों के समय में दक्षिण भारत की वास्तु-कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। **फर्गुसन** ने लिखा है : "चोल कलाकार अपनी रचनाओं के लिए दानवों के समान कल्पना करते थे और उनकी पूर्ति जौहरियों के समान करते थे।"

इस काल में मूर्ति-कला का बहुत अच्छा विकास हुआ। सभी हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रतिष्ठित की गयी थीं। इसके अतिरिक्त, सम्पूर्ण मन्दिर को छोटी-छोटी

---

1 "It is the touchstone of Indian architecture as a whole." —*Percy Brown.*

अनेक मूर्तियों से अलंकृत किया जाता था। कुछ मन्दिरों में चोल-सम्राटों और उनकी पत्नियों की विशालकाय मूर्तियाँ भी स्थापित की गयी थीं। परन्तु चोल-मूर्तिकला की मुख्य विशेषता काँसे की मूर्तियों का निर्माण था। उनमें भी शिव की 'नटराज' के रूप में काँसे की मूर्तियाँ सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं।

इस समय में चित्रकला में भी प्रगति हुई। तंजौर के मन्दिर में बने हुए चित्रों की समानता बहुत कुछ अजन्ता के भित्ति-चित्रों से की जा सकती है।

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार से चोल-शासनकाल में प्रगति हुई। चोल-वंश की मुख्य उपलब्धियाँ उसका स्थानीय स्वशासन, नौ-सेना, तमिल-ग्रन्थ, विशालकाय मन्दिर और मूर्तियाँ हैं। इस कारण, दक्षिण भारत के इतिहास में यह काल एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।